REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | MARCH - 2019

कबीर के राग

डॉ. सतीश कुमार
सहायक प्राध्यापक, एम.एम.टी.एम. कॉलेज, दरभंगा.

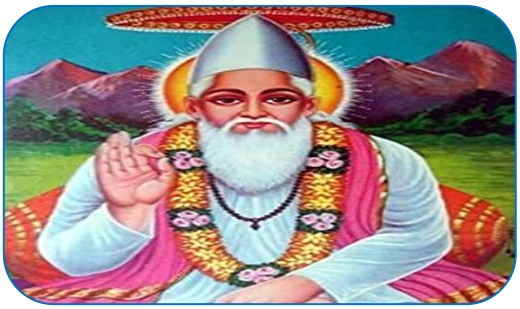

भारतीय धार्मिक वाङ्मय के जिन दिव्य चरित्र का अभ्यर्थना सगुण एवं निर्गुण दोनों सम्प्रदायों के भक्तों ने की, उनमें मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। वस्तुतः वैदिक वाङ्मय से 'राम शब्द' एवं 'रामकथा' के कुछ सूत्रों का मिलना भी सगुण–निर्गुण भक्तों के बीच श्रीराम के समान रूप से आराधित होने के कारण है।

तकरीबन पाँच सौ वर्ष पूर्व ही विद्वान नीलकंठजी महाराज ने वेदों से श्रीरामकथा संबंधी डेढ़ सौं मंत्रों का संकलन' मंत्र रामायण' नाम से किया। पंडित रामकुमार दास ने अपनी रचना 'वेदों में रामकथा' लिखी, जिसमें उन्होंने संहिताओं से ढूँढकर 'मंत्र रामायण' में संकलित सभी मंत्रों की सूचनात्मक पुष्टि भी की। रामकथा का आधार वैदिक है, जहाँ से गोसाई (गोस्वामी) सम्प्रदाय के भक्तों के बीच राम आराधना के आधार बन गये। इसी गोसाई सम्प्रदाय के बीच कबीर का पालन–पोषण हुआ, जिसका जिक्र कबीर साहब ने स्वयं भी किया है, इस कारण कबीर–काव्य भी राम से वंचित नही रह सका। चूँकि साकार तत्त्वोपासक ही धार्मिक मान्यता पा सके, इस कारण आलोचकों ने संत कबीर को धार्मिक नहीं कहा, जबकि इसके साखियों एवं पदों को जब हम देखते हैं, तब स्पष्ट हो जाता है कि संत कबीर पूर्णतः धार्मिक पुरूष थे और उनके राम साकार नहीं थे। यही कारण है कि महात्मा कबीर ने अपने राम को 'निरगुनिया राम' कहकर भी संबोधित किया है–

'निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अविगति की गति लखी न जाई।।'

'दशरथ–सुत तिहु लोक बखाना। रामनाम का मरन न जाना' मानिन्द पंक्तियों के माध्यम से वह स्पष्ट कर देते हैं कि उनका राम दशरत–सुत से अलग है, जहाँ वास्तविक रामत्व का दर्शन होता है। कबीर के राम साकार नहीं हैं, लेकिन राम को निराकार रूप में प्राप्त कर कबीर साहब स्वयं को धन्य समझते है–

'अब मोहि जलत राम जलु पाइआ।
राम उदकि तनु जलतु बुझाइआ।।'
'साकक मरहि संत सभी जीवहि।
राम रसाइनु रसना पीवहि।

कबीर निर्गुण राम (यानि मात्र रामनाम जपकर्त्ता के राम) के उपासक हो ही अमर मानते हैं। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि कबीर, के हृदय में रामनाम ही शक्ति के रूप में अवस्थित हैं। वह अपादमस्तक रामनामोच्चारण–रस से सराबोर हैं।

कबीर के राम सभी उपास्य से न्यारे हें– 'राम निरंजन न्यारा रे' अथवा 'कहै कबीर वै राम निराल।' कबीर के मन में भी राम का स्थान हो गया, इसका कारण संतों का संसर्ग भी स्वयं कबीर ने ही सिद्ध किया है– 'सत् संगति मति मन करि धीरा। सहज जानि रामहि भजै कबीरा।'

कबीर संत समागम से पूर्व ही राम से परिचित हो चुके थे। इसका पता उनके जीवन–वृत से भी लगता है। प्रख्यात् समालोचक रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' पुस्तक में स्पष्ट लिखा है– 'उनका जन्म ऐसे जुलाहे कुल में हुआ था, जिसमें उनके संत–जीवन के लिए विशेष सुविधाएं थीं। कबीर ने अपने पालक पिता को एक बड़ा गोसाई कहा है। बनारस और उसके आसपास उस समय के गोसाई 'दसनामी' भेद से अपी उपासना में कहीं शिव और कहीं विष्णु के भक्त होते थे। कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति में थे, जिसमें मुसलमानी संस्कार के साथ ही शिवोपासक योगियों के भी संस्कार थे और वे किसी शिवोपासक 'दसनामी' सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाई कहलाते थे।' 'कबीर ने अपने पिता को इंगित करते हुए कहा है–'पिता हमारो बड गोसाई।'

तिसु पिता पहि हउ किउकरि जाई।।?
सतिगुर मिले त मारगु दिखाइआ।
जगत पिता मेरे मनि भाइया।।
हउ पूतु तेरा तूं आपु मेरा।
एकै ठाहर दुहा बसेरा।'

कबीर भक्त थे– निरगुन राम मोहि अति प्यारा– के गायक थे। पहले वह धार्मिक है, बाद में निर्गुण सम्प्रदाय के। पिता की आज्ञा से ही ये काशी–गंगाघाट की सीएियों पर स्वामी रामानन्दाचार्य के आगमन का समय जानकर लेट गए होंगे और किसी देह पर लात स्पर्श से विस्मित रामानन्दाचार्य के मुख से निसृत' राम–राम ध्वनि को गुरु–मंत्र मानकर ग्रहण किया होगा जो इनके जीवन का मूल मंत्र हो गया। यही कारण है कि राम से संबंधित इनके पदों की संख्या भक्ति परक साखियों की तुलना में अधिक है।

गुरु–ग्रंथ साहब स्थित कबीर की साखियों एवं पदों में भी कबीर के राम कबीरत्व के साथ दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः कबीर ने जिस राम को अपनी भक्ति का आराध्य बनाया, उसका पता भी बताया है–

'आसि–पासि तुलसी कौ बिरवा, माहि द्विरिका गाऊँ रे।
तहाँ मेरो ठाकुर राम राई है, भगत कबीरा नाऊँ रे।।

कबीर ने गोस्वामी तुलसीदास मानिन्द दास भक्ति का भी शंखनाद किया है। स्वयं को कीतदास समझते हुए उन्होंने लिखा है कि हे गुसाई (मालिक)। मैं तेरा एक गुलाम मात्र हूँ, क्योंकि मेरा जो कुछ भी तन, मन अथवा धन के रूप में है, वह सभी मेरे अपने रामजी के लिए ही है। उसी ने मुझ कबीर को हाट में लाकर उतार दिया है। वास्तव में वही मेरा क्रेता भी है और विक्रेता भी। यदि वह मुझे बेचना चाहता है, तब फिर कौन है जो मुझे रख सकेगा तथा इसी प्रकार यदि वह मुझे रखना चाहता है, तब कौन मुझे बेच सकता है। कितना अडिग विश्वास है कबीर को राम पर। तुलसी से तनिक भी कम नहीं–

मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाई।
तन, मन, धन मेरा राम जी के तॉई।।

संत कबीर अपने उस 'राम राय' को 'बाप राम या आप रामराय कहना भी पसंद करते है, ऐसा तुलसी आदि पूर्ण साकार रामोपासक नहीं कर सके, लेकिन कबीर ने अपने पाल्य पिता में ही गुरु भी देखा और राम भी। इसलिए राम में पिता को ही देख रहे हैं। एक पद में वह और भी स्पष्ट कहते हैं– 'हे बाप राम। तेरी विनती सुनो, क्योंकि ये बातें औरों के लिए छिपी हो सकती है किन्तु तुम्हारे लिए ये प्रकट और प्रत्यक्ष हैं–

'बाप राम सुनि विनती मोरी।
तुम्हसुँ प्रकट लोगनि सूँ चोरी।।

बाप यदि संबोधन से वास्तव में कबीर राम से अपनी आत्मीयता का भाव प्रकट कर रहे हैं। इस घनिष्टता प्रकटीकरण के धरातल पर तुलसी आदि सगुण वैष्णव भक्तों की तरह 'राम की बहुरिया' के रूप में भी कबीर स्वयं को ढ़ालते हुए नजर आते हैं। वस्तुतः दाम्पत्य भाव सर्वाधिक आत्मीय माना जाता है। राम अथवा हरि के साथ ऐसा भाव संत कबीर ने भी जोड़ा है'–'हरि मेरा पिव, भाई हरि मेरा पीव।

हरि दिन रहि न सकत मेरा जीव।।

इतना ही नहीं, वह राम के साथ ही विधिवत अपने विवाह की बात भी स्वीकारते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि स्वकीया नायिका की तरह कबीर ने स्वयं को देखा है। दुलहनि गाबहु मंगलाचार। हम धरि आए हो (राजा) राम भरतार।।

इस प्रकार संत कबीर के विभिन्न पदों एवं साखियों से ही सिद्ध होता है कि वह पूर्णतः धार्मिक थे, अंधविश्वासी नहीं। भक्त थे, अंधभक्त नहीं। कबीर के राम कोई व्यक्ति विशेष नहीं हो सकते और न ही वास्तव में हम उन्हें किसी अवतार के रूप में मान सकते हैं। 'कबीर के राम को हम किसी देव विशेष की कोटि में नहीं रख सकते, क्योंकि इनकी सहायता के बल पर भी उनका (कबीर का) अपना काम चलनेवाला नहीं है।''[2] कबीर साहब का कहना है कि यदि मैं कोई याचना करता हूँ तो वह भी केवल राम से ही, अन्य देवताओं से मेरा कोई सरोकार नहीं।

कबीर के राम उनके लिए सभी कुछ मैं। यहाँ तक कि उन राम के नाम तक को भी वे सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करना चाहते हैं।''[3] वे उस रामनाम को कभी 'रामरतन' तो कभी रामरसायन, कभी रामजलु तो कभी रामकसौटी वा 'चिन्तामणि' कहते हुए अघाते नहीं है। बिहारी लाल के 'कहियत भिन्न न भिन्न' की तरह राम से अपना आभ्यांतरिक सम्बन्ध बताते हुए स्पष्ट कर देते है कि उनका मन राम का स्मरण करता है। उनका मन ही राम है। राम ही उनका मन है–

(कबीर) मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि है, रहया, सीस नवावौ काहि।।

उनके राम यत्र–तत्र उनके काव्य में 'रघुनाथ' 'घुराया' अथवा रघुपतिराजा भी कहलाए हैं लेकिन रहीम, करीम, केशव से भी अभिन्न हैं तथा 'विसमिल' को 'विश्वभर' कहना भी गलत नहीं है।''[4]

कबीर की भक्ति समन्वयमूलक है। डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मांगध' के अनुसार– 'वे चाहते थे– ब्राह्मणों और शूद्रों (ब्राह्मणेत्तर) को एक कर देना। हिन्दू और मुसलमानों के बीच के द्वेष को वे भी चाहते थे तोड़ देना। चाहे तो वह सकते है कि गाँधी–भावना (अल्ला, ईश्वर तेरा नाम, सबको सम्मति द भगवान) की जड़ यही है।''[5] डॉ. 'मागध' की अवधारणा से भी सिद्ध है कि राम 'रहीम–ईसा–मूसा आदि को एक राम, निर्गुण राम, निराकार, सर्वत्र व्याप्त, सर्वशक्तिमान में केन्द्रित कर संत कबीर ने समन्वयमूलक धर्म की स्थापना की है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. संत कबीर–डॉ. राम कुमार वर्मा, प्रकाशक– साहित्यिक भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।
2. कबीर संदेश– अभिलाषा दास, प्रकाशक कबीर पारख संस्थान, प्रीतम नगर, इलाहाबाद।
3. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास–बाबू गुलाम राय–लक्ष्मी नारायण अग्रवाल (प्रकाशक) आगरा।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
5. हिन्दी साहित्य : युग और धारा–कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध, भारती भवन, पटना।